अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : 52 अंक : 12 मार्गशीर्ष-पौष वि.सं. 2082 दिसम्बर, 2025 पृष्ठ-28 RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

समिति में मोहन गुरुस्वामी का व्याख्यान

देश के समक्ष खड़े ज्वलंत राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों पर लोक नीति तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों के जाने-माने विश्लेषक मोहन गुरुस्वामी के गत 4 नवम्बर को राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में प्रमुख विशेषज्ञों के समक्ष करीब डेढ़ घंटे का सारगर्भित व्याख्यान दिया।

गुरुस्वामी ने अर्थव्यवस्था में बढ़ते वैश्विक असंतुलन के बरक्स भारत की स्थिति का विश्लेषण किया। विकेंद्रीकृत व्यवस्था से कांग्रेस के दौर में आए केंद्रीकृत विचलन से लेकर मौजूदा दौर तक के केंद्रीकरण पर उन्होंने उदाहरणों के साथ प्रकाश डाला।

उन्होंने 1990 के दशक के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में आए तेज उछाल का जिक्र करते हुए राज्यों, खास कर उत्तर और दक्षिण, के बीच असंतुलित हिस्सेदारी को रेखांकित किया। राज्यों से प्राप्त होने वाले कर राजस्व तथा उसके मुकाबले वहां होने वाले खर्च के आँकड़े देते हुए उन्होंने बताया कि प्रत्येक सौ रुपयों के के प्रत्यक्ष कर संग्रहण के मुकाबले राज्यों को मिलने वाले रुपयों में अंतर है। उन्होंने देश के संघीय ढांचे की विकेंद्रीकृत व्यवस्था के एकीकृत केंद्रीय सत्ता की ओर बढ़ते झुकाव को इंगित किया जो शनैः शनैः अधिक गहरा होता जा रहा है। उनका कहना था कि संसद की सीटों के अगले सीमांकन के बाद उत्तरी राज्यों का वर्चस्व और बढ़ जाएगा।

जयपुर स्थित एमएनआईटी संस्थान के पूर्व प्रोफेसर तथा वर्तमान में बांग्लादेश की राजधानी ढाका में विश्व बैंक के तकनीकी सलाहकार देव कुमार द्विवेदी तथा प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थान में प्रोफेसर रहे मोहम्मद हसन के प्रयासों से समिति में यह व्याख्यान हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रख्यात पत्रकार तथा हरिदेव जोशी पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति ओम थानवी ने की।

कार्यक्रम में पीयूसीएल की अध्यक्ष कविता श्रीवास्तव के अलावा नगर के अनेक ख्यातनाम साहित्यकार और उच्च शिक्षा के विद्वान मौजूद थे।❑

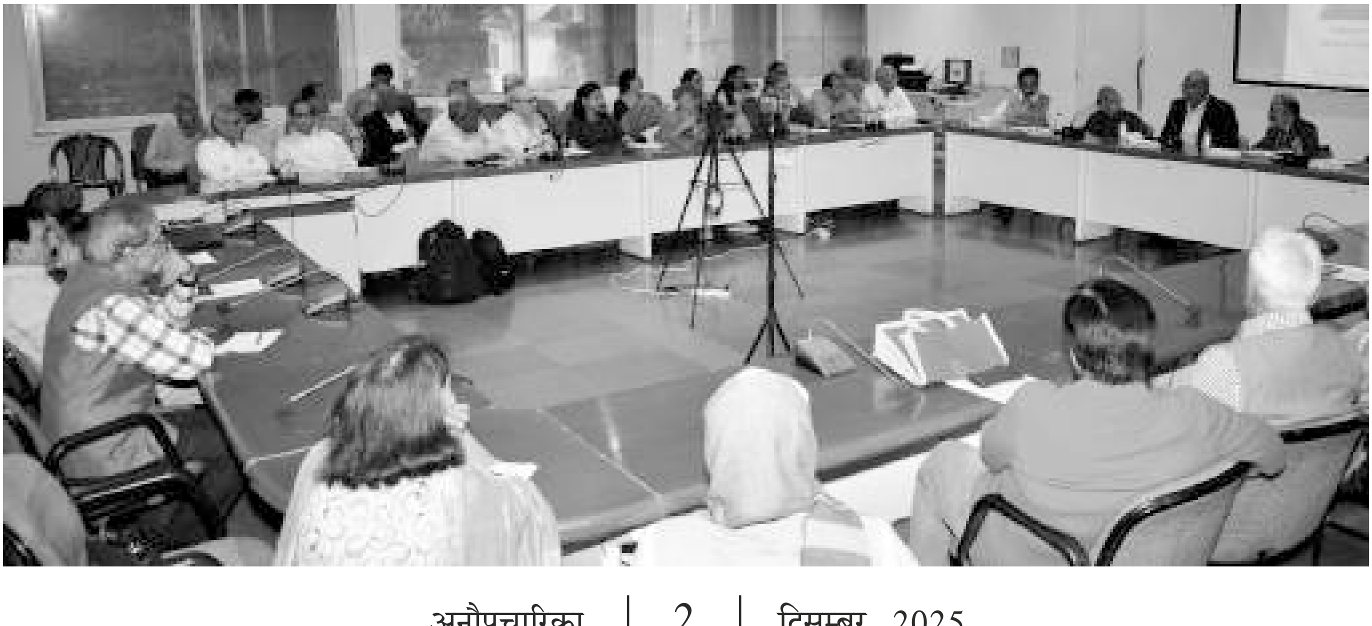

सत्येनोत्पद्यते धर्मो दया दानेन वर्धते।
क्षमया स्थाप्यते धर्मः क्रोध लोभाद विनश्यति।।

- महाभारत

धर्म सत्य से उत्पन्न होता है। करुणा और समर्पण से यह बढ़ता है। सहनशीलता से यह स्थायी रहता है (अस्तित्व में बना रहता है)। क्रोध और लोभ से यह लुप्त हो जाता है।

समानो मन्त्र: समिति: समानी समानं मन: सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व: समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूति: समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : 52 अंक : 12 मार्गशीर्ष-पौष वि.सं. 2082 दिसम्बर, 2025 मूल्य : पचास रुपये

क्र म

वाणी

3. महाभारत

संपादकीय

5. शिक्षा व्यक्ति और समाज दोनों को उजाला देती है!

विमर्श

7. एआई सीखने सिखाने के नय नियम लिख रही है
   – साक्षी रेवाड़िया

अध्ययन

10. मस्तिष्क को स्क्रीन की नहीं, किताब की ज़रूरत है!
    – बीजिन जोस

13. क्या संतान जीवन में स्थायित्व और प्रसन्नता लाती है?
    – डॉ. लता व्यास

14. हुसैन की कलात्मक विरासत को संजोता संग्रहालय **– राधिका अयंगर**

लेख

16. वर्तमान समय में एक चिकित्सक का जीवन वृत्त
    – डॉ. विवेक एस.अग्रवाल

18. शिक्षा सामाजिक बदलाव की वाहक कैसे बने!
    – राजेन्द्र भाणावत

अनिल बोर्डिया स्मृति व्याख्यान

20. सरकार शिक्षा की सुविधाकर्ता है नियंत्रक नहीं!

छगन मोहता स्मृति व्याख्यान

22. आर्थिक नीतियां असंगठित क्षेत्र को मदद करे

गतिविधियां

23. निज़ाम पर जोधपुर में राष्ट्रीय संगोष्ठी
24. हाथ से लिखना आत्मा से संवाद है!
25. शिक्षा की अलख : प्रकृति को बचाने की शिक्षा

समाचार

26. भारत के दानवीरों की रैंकिंग में शिव नादर

महात्मा गांधी का कथन

27. सत्य के अलावा कोई कूटनीति नहीं

क्रिसमस की शुभकामनाएं

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-302004
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com
www.raea.in

संपादक :
राजेन्द्र बोड़ा
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

संपादकीय

शिक्षा व्यक्ति और समाज दोनों को उजाला देती है!

शिक्षा केवल पुस्तकों, परीक्षाओं और अंकों तक सीमित नहीं होती। इसका वास्तविक स्वरूप मनुष्य के भीतर सोचने–समझने की क्षमता को विकसित करना होता है। शिक्षा हमें दुनिया को देखने का सही दृष्टिकोण देती है और उतनी ही गहराई से अपने भीतर झांकने की प्रेरणा भी देती है। शिक्षित मनुष्य न केवल बाहरी संसार को समझता है बल्कि स्वयं का भी सही मूल्यांकन कर पाता है। यही शिक्षा का सबसे बड़ा उद्देश्य है - दूसरों के प्रति संवेदनशीलता और स्वयं के प्रति जागरूकता।

सच तो यह है कि जब हम किसी से संवाद करते हैं तब उसमें कहने और सुनने के बीच के अंतर को समझने की कोशिश नहीं करते। संवाद बहस में तब्दील हो जाता है। जिस दिन यह बात समझ में आ जाती है, व्यक्ति पहले जैसा नहीं रहता। शिक्षा यह समझ देती है। इससे व्यक्ति का अपने से बिल्कुल विपरीत लोगों के साथ धैर्य बढ़ जाता है।

जब कुछ भी कहा जाता है तो वह बात जिसे कही जा रही है उसके संदर्भ, पूर्वाग्रहों और पूर्वकल्पित विचारों के माध्यम से फ़िल्टर होकर उस तक पहुंचती है और जो बचता है वह अंततः वह संदेश होता है जिसे वह समझता है। अनेक कारणों से यह संभव है कि जो व्यक्त किया जा रहा है उसकी दूसरा बिल्कुल अलग तरीके से व्याख्या कर ले। वास्तव में जो समझा जाता है, वह स्वाभाविक रूप से इस बात पर निर्भर करता है कि किससे बात की जा रही हैं, लेकिन यह बहुत दुर्लभ है कि पूरा संदेश ठीक उसी तरह से पहुंच जाए जैसा कहने वाले ने आपने दिमाग में सोचा था। शिक्षा मनुष्य को संचार का कौशल सिखाती है।

शिक्षा हमें विविधता का सम्मान करना भी सिखाती हैचाहे वह जाति की हो, भाषा की हो, विचारों की या जीवनशैली की हो। जब हम सही नज़रिया रखते हैं तो हमारे भीतर धैर्य, सहनशीलता और सहानुभूति जैसे गुण स्वतः विकसित हो जाते हैं। इससे समाज में आपसी समझ बढ़ती है और संघर्ष के अवसर कम हो जाते हैं। शिक्षा दूसरे के नज़रिये से देखने की कला सिखाती है। अशिक्षित मन अक्सर पूर्वाग्रहों, संकीर्णता और गलत धारणाओं से घिरा रहता है। लेकिन शिक्षित व्यक्ति दूसरों को उनके व्यवहार, परिस्थितियों और सोच के आधार पर समझने की कोशिश करता है। वह यह जानता है कि हर व्यक्ति की पृष्ठभूमि अलग होती है, अनुभव अलग हैं।

शिक्षा स्वयं को पहचानने की शक्ति भी देती है। अक्सर मनुष्य जीवन भर दूसरों को समझने में लगा रहता है, पर अपने अंदर झांकने का साहस नहीं जुटा पाता। शिक्षा आत्मविश्लेषण की क्षमता प्रदान करती है। जब हम पढ़ते हैं, सीखते हैं, विचारों से रू-बरू होते हैं, तब हम अपनी कमजोरियों, खूबियों, इच्छाओं और लक्ष्यों को जान और समझ पाते हैं। आत्मनिरीक्षण का यह गुण हमें बेहतर इंसान बनाता है। हम अपने व्यवहार, सोच और आदतों पर नजर डाल पाते हैं और सुधार के लिए कदम भी उठा पाते हैं। शिक्षा हमें यह भी समझ देती है कि जीवन में सफलता केवल बाहरी उपलब्धियों से नहीं मिलती, बल्कि स्वयं को बेहतर बनाकर भी हासिल की जा सकती है।

शिक्षा मनुष्य को विवेकशील बनाती है। वह सही-गलत, उचित-अनुचित और सत्य-असत्य में अंतर पहचानने की क्षमता देती है। जब हम अपने भीतर झांकते हैं तो हमें यह एहसास होता है कि हमारे निर्णयों और कार्यों का प्रभाव न केवल हमारे जीवन पर बल्कि दूसरों के जीवन पर भी पड़ता है। यही सोच व्यक्ति को जिम्मेदार नागरिक बनने की ओर ले जाती है।

लोग जो करते हैं, वह तो उन्हें दिखता है, लेकिन उन्हें यह नहीं दिखता कि वे जो करते हैं, वह क्यों करते हैं। इसलिए, वे जो करते हैं, उसके आधार पर ही एक-दूसरे का मूल्यांकन करते हैं। केवल दो परिस्थितियों में ही कोई बस खुद हो कर राह सकता है: पहली परिस्थिति तब होती है जब कोई एक कमरे में अकेला होता है। तब इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि वह कैसे बोलता है या क्या करता है। वह व्यक्ति अकेला कमरे में चिल्ला सकता हैं, गाली दे सकता है या फिर चुपचाप बैठकर जीवन के गूढ रहस्यों पर विचार कर सकता है। इससे किसी को कोई फ़र्क नहीं पड़ता। अपने एकांत में कोई भी व्यक्ति अपना मन चाहा व्यवहार कर सकता हैं। दूसरी परिस्थिति में कोई पूरी तरह से खुद हो सकता है, जब कमरे में मौजूद सभी लोग बिल्कुल उसके जैसे हों। बच्चों को यही सिखाया जाता है कि दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम अपने लिए चाहते हो। यह बहुत नेक इरादे वाली बेहतरीन सलाह है, और यह कारगर भी है – जब तक कि हर कोई उसके जैसा ही हो। इसके लिए हमें उन सभी लोगों की सूची बनानी है जिन्हें हम जानते हैं कि वे सभी परिस्थितियों में बिल्कुल हमारे जैसा ही सोचते और व्यवहार करते हैं। बस उनके साथ समय बिताना शुरू कर देना है।

किसी भी अन्य स्थिति में, यह समझना जरूरी होता है कि लोग हमें कैसे देखते हैं और यह भी कि दूसरे लोग कैसे काम करते हैं। यह जानने के लिए किसी किसी अनुसंधान की जरूरत नहीं है कि ज़्यादातर लोग एक जैसे जैसे नहीं होते हैं। शिक्षा सिर्फ ज्ञान का संचय नहीं होती है, बल्कि दृष्टिकोण का विस्तार होता है। वह दूसरों को समझने का सही तरीका सिखाती है और स्वयं को पहचानने का अवसर देती है। शिक्षित व्यक्ति वही है जो दर्पण की तरह दुनिया की सच्चाइयों को देखता है और दीपक की तरह अपने भीतर की रोशनी को भी तलाशता है। ऐसी शिक्षा से व्यक्ति और समाज दोनों को उजाला मिलता हैं। ❑

साक्षी रेवाड़िया

हरियाणा के रोहतक स्थित इंडियन इंस्टिटयूट ऑफ मैनेजमेंट में पढ़ाने वाली शिक्षिका ने शिक्षा प्रणाली में एआई अर्थात मशीनी बुद्धि को समाहित किए जाने के मुद्दे पर यह विचारोत्तेजक आलेख लिखा है। सं.

एआई सीखने सिखाने के नये नियम लिख रही है

पाल से लेकर भाप इंजन तक, बैलगाड़ी से लेकर मोटर कार तक, झोपड़ियों से लेकर गगनचुंबी इमारतों तक, मानव इतिहास का हर चरण आश्चर्यजनक तकनीकी प्रगति से चिति है। प्रत्येक नए आविष्कार ने जीवन को तेज, आसान और अधिक आरामदायक बना दिया। फिर भी, इस सारे परिवर्तन के बीच, मानव अनुभव का एक पहलू आश्चर्यजनक रूप से स्थिर रहा है: हम कैसे संवाद करते हैं।

माध्यम में नाटकीय रूप से विकास हुआ है – संदेशवाहकों और हस्तलिखित पत्रों से लेकर टेलीफोन और त्वरित संदेश तक, लेकिन इसका सार नहीं बदला है। यह अभी भी एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति तक पहुंचने का माध्यम है। गांव के चौराहे पर नगर-प्रचारक की ढोल की थाप अब सरकारी वेबसाइट पर डिजिटल सूचना बन गई है, लेकिन दोनों ही संपर्क के कार्य हैं। साधन बदल गए हैं, लेकिन संवाद करने की प्रेरणा नहीं बदली है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता अब सीखने और काम करने के नियमों को नए सिरे से लिख रही है। यह समीकरण हल करती है, निबंध लिखती है, इमारतों का डिज़ाइन तैयार करती है और संगीत रचना करती है। यह एक शिक्षक, अनुवादक, शोधकर्ता और यहाँ तक कि एक साथी के रूप में भी काम कर सकती है। तर्क, संरचना और निश्चित प्रणालियों पर निर्भर विषयों – गणित, भौतिकी, इंजीनियरिंग – में एआई पहले ही परिवर्तनकारी बन चुकी है। छात्र एक बटन के क्लिक पर जटिल सूत्रों की तुरंत व्याख्या प्राप्त कर सकते हैं या कठिन वैज्ञानिक अवधारणाओं की कल्पना कर सकते हैं।'

हालाँकि, भाषा एक अलग क्षेत्र से संबंधित है। यह न केवल नियमों

की एक प्रणाली है, बल्कि संस्कृति और भावनाओं की जीवंत अभिव्यक्ति भी है। एआई व्याकरण और शब्दावली को संसाधित कर सकता है, लेकिन यह हास्य, व्यंग्य, स्नेह या संकोच को नहीं पकड़ सकता। मशीन द्वारा अनुवादित वाक्य शब्दों में तो सही हो सकता है, लेकिन भावना में गलत। जब कोई कहता है, मुझे तुम्हारी याद आती है, तो अर्थ भावना से अविभाज्य होता है, जिसे मशीन महसूस नहीं कर सकती।

तकनीक ने अनुवाद को लगभग सहज बना दिया है। एक हिंदी ईमेल त्रुटिहीन अंग्रेजी में दिखाई दे सकता है; एक जापानी लेख कुछ ही सेकंड में फ्रेंच में पढ़ा जा सकता है। फिर भी, ये अनुवाद, चाहे कितने भी सटीक क्यों न हों, नीरस लग सकते हैं। मानवीय वाणी की पहचान, लहजा, लय और सूक्ष्म गर्मजोशी आसानी से खो जाते हैं। अनुवाद अर्थ तो हस्तांतरित कर सकता है, लेकिन अनुभव नहीं। किसी भाषा को समझने के लिए उसके शब्दों को समझने से कहीं अधिक की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि भाषा सीखना हमेशा एक सूत्र सीखने से अलग रहा है। यह कोई अमूर्त कौशल नहीं, बल्कि एक मानवीय अंतःक्रिया है। यह बातचीत में, हँसी में, गलतियों में घटित होता है। यह तब होता है जब कोई व्यक्ति अपने विचार व्यक्त करने में कठिनाई महसूस करता है और उसे धीरे से सुधारा जाता है, या जब हफ्तों के अभ्यास के बाद कोई चुटकुला आखिरकार समझ में आता है। ये छोटे-छोटे, जीवंत क्षण आत्मविश्वास और जुड़ाव का निर्माण करते हैं, जिसे कोई भी ऐप या चैटबॉट दोहरा नहीं सकता।

स्मार्ट उपकरणों के माध्यम से मानवीय निर्णय क्षमता, रचनात्मकता और आलोचनात्मक सोच को बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। एआई ग्रेडिंग और उपस्थिति जैसे दोहराए जाने वाले कार्यों को स्वचालित करता है, जिससे शिक्षकों को छात्रों के साथ सार्थक जुड़ाव पर अधिक समय बिताने की स्वतंत्रता मिलती है। यह व्यक्तिगत पाठ योजना और वास्तविक समय की प्रतिक्रिया में एक शक्तिशाली सहायक के रूप में कार्य करता है, जिससे शिक्षकों की प्रभावशीलता बढ़ती है। इसलिए, एआई कक्षा में हलचल मचा रहा है, फिर भी एक ऐसे उत्साही शिक्षक का कोई विकल्प नहीं है जो सहानुभूति और अंतर्दृष्टि के साथ सीखने को प्रेरित करता हो।

चूंकि एआई शिक्षा को नया रूप दे रहा है, इसलिए यह कार्यबल में बड़े बदलावों का भी संकेत दे रहा है। हाल ही में आई नीति आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, अगले पांच वर्षों में एआई भारत के तकनीकी क्षेत्र में दो मिलियन नौकरियों की जगह ले सकता है, साथ ही यह अनुमान है कि 2030 तक यह चार मिलियन नई नौकरियां पैदा करेगा, ऐसी नौकरियां जिनके लिए नए कौशल और अनुकूलनशीलता की आवश्यकता होगी। यह एक ऐसी दुधारी तलवार है जिसके लिए आज के शिक्षार्थियों को तत्काल तैयारी की आवश्यकता है।

प्रारंभिक शिक्षा में एआई को शामिल करके, भारत का लक्ष्य एक ऐसा कार्यबल तैयार करना है जो डिजिटल अर्थव्यवस्था के लिए तैयार हो, और तीव्र स्वचालन से पीछे न छूट जाए। लेकिन क्या छात्र और शिक्षक परिवर्तन के इस तूफान को अपनाने के लिए तैयार हैं? प्रश्न केवल नौकरी के नुकसान या सृजन का नहीं है, बल्कि एक ऐसे लचीले कार्यबल को आकार देने का है जो एआई की लहर पर सवार हो सके।

प्रारंभिक शिक्षा में एआई को शामिल करके, भारत का लक्ष्य एक ऐसा कार्यबल तैयार करना है जो डिजिटल अर्थव्यवस्था के लिए तैयार हो, और तीव्र स्वचालन से पीछे न छूट जाए। लेकिन क्या छात्र और शिक्षक परिवर्तन के इस तूफान को अपनाने के लिए तैयार हैं? प्रश्न केवल नौकरी के नुकसान या सृजन का नहीं है, बल्कि एक ऐसे लचीले कार्यबल को आकार देने का है जो एआई की लहर पर सवार हो सके।

जनरेटिव एआई तकनीक, जो डेटा में पैटर्न के आधार पर नई सामग्री बनाती है, भारतीय शिक्षा में पहले से ही लोकप्रिय हो रही है। भारत के आधे से अधिक उच्च शिक्षा संस्थान शिक्षण और सीखने को बेहतर बनाने के लिए जनरेटिव एआई को शामिल कर रहे हैं। छात्रों के प्रश्नों का उत्तर देने वाले एआई चैटबॉट और व्यक्तिगत अध्ययन सामग्री से लेकर, जनरेटिव एआई शिक्षा को अधिक आकर्षक और अनुकूलित बना रहा है। एआई उपकरणों का यह विस्फोट भारत के विशाल और विविध शिक्षा परिदृश्य में सीखने के अंतर को

काफी कम कर सकता है। यह संभावनाओं से भरा एक क्षेत्र है, लेकिन इसमें पहुँच, गुणवत्ता और नैतिकता से संबंधित चुनौतियाँ भी हैं।

शिक्षा में एआई का शायद सबसे उत्साहजनक प्रभाव समावेशिता को बढ़ावा देने में इसकी भूमिका है। एआई संचालित अनुकूली शिक्षण और भाषा प्रसंस्करण उपकरण गैर-देशी भाषियों और विकलांग शिक्षार्थियों के लिए बाधाओं को तोड़ते हैं। शैक्षिक सामग्री का अनुकूलन समान शिक्षण वातावरण का निर्माण कर सकता है। भारत जैसे बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी देशों में, समावेशिता के लिए यह एआई-संचालित प्रयास इस नियम को फिर से लिख सकता है कि कौन सीखेगा और कैसे। क्या एआई वह महान समकारक बन सकता है जिसकी दुनिया भर की शिक्षा प्रणालियाँ लंबे समय से तलाश कर रही हैं?

हर शिक्षा में एआई को शामिल करने की भारत की साहसिक पहल ज्ञान प्रदान करने के तरीके, शिक्षकों के पढ़ाने के तरीके और छात्रों की सीखने में भागीदारी में बड़े बदलाव का संकेत देती है। यह क्रांति चुनौतियों के साथ आती है: बड़े पैमाने पर शिक्षकों का प्रशिक्षण, एआई उपकरणों तक समान पहुँच सुनिश्चित करना और छात्रों को ऐसी नौकरियों के लिए तैयार करना जो अभी मौजूद ही नहीं हैं।

क्या भारतीय स्कूल वास्तव में इस एआई बदलाव के लिए तैयार हैं? क्या शिक्षा प्रणाली वंचित समुदायों को पीछे छोड़े बिना तेज़ी से हो रही तकनीकी प्रगति के साथ तालमेल बिठा पाएगी? यह तो समय ही बताएगा। लेकिन एक बात स्पष्ट है।

(दैनिक अखबार 'द हिन्दू से साभार)
❑

पैरासोशल : वर्ड ऑफ़ द ईयर

पैरासोशल शब्द लोगों द्वारा उन सार्वजनिक हस्तियों, जिन्हें वे व्यक्तिगत रूप से नहीं जानते, के साथ बनाए जाने वाले एकतरफ़ा रिश्तों को अभिव्यक्त करता है। इस शब्द को कैम्ब्रिज डिक्शनरी के वर्ड ऑफ़ द ईयर का खिताब दिया गया है। यह चयन एक उभरती हुई सांस्कृतिक घटना को उजागर करता है।

पैरासोशल शब्द शिकागो विश्वविद्यालय के समाजशास्त्रियों द्वारा 1956 में पहली बार टेलीविजन दर्शकों के ऑन-स्क्रीन व्यक्तित्वों के साथ संबंधों का वर्णन करने के लिए गढ़ा गया था, जो हाल ही में अकादमिक हलकों से मुख्यधारा की शब्दावली में उभरा है।

यह बदलाव काफी हद तक सोशल मीडिया द्वारा संचालित है, जिसने लोगों के मशहूर हस्तियों के साथ बातचीत करने के तरीके को बढ़ाया और बदल दिया है। इस शब्द की लोकप्रियता तब और बढ़ गई जब यूट्यूब स्टार आईशोस्पीड ने एक जुनूनी प्रशंसक को सार्वजनिक रूप से अपना नंबर 1 पैरासोशल करार दिया।

शब्दकोश में पैरासोशल शब्द की पहचान आधुनिक मानवीय संबंधों में एक गहन विकास को रेखांकित करती है। यह दर्शाता है कि कैसे सर्वव्यापी मीडिया, शुरुआती टेलीविजन से लेकर आज के डिजिटल प्लेटफॉर्म तक, सार्वजनिक हस्तियों को सीधे हमारे घरों और जीवन में लाता है, जिससे अंतरंगता का भ्रम पैदा होता है।

इस शब्द का व्यापक रूप से अपनाया जाना इन अनोखे, अक्सर गहन, एकतरफा संबंधों के बारे में बढ़ती जागरूकता का प्रतीक है जो समकालीन संस्कृति और तेजी से मध्यस्थता वाली दुनिया में रिश्तों की हमारी समझ को आकार देती है।

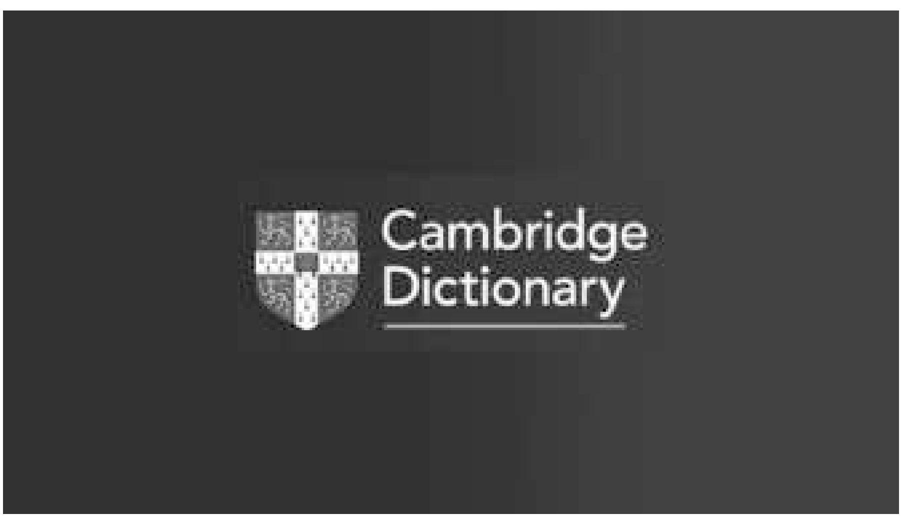

❑

बीजिन जोस

डिजिटल युग में भी किताबों की क्यों अहमियत बनी रहेगी इसके विभिन्न आयामों पर विमर्श करता यह आलेख कहता है कि पुस्तक पढ़ना मस्तिष्क का व्यायाम होता है। सं.

मस्तिष्क को स्क्रीन की नहीं, किताब की ज़रूरत है !

❑

हर साल, अक्टूबर में साहित्य के नोबेल पुरस्कार की घोषणा की जाती है। यह वास्तव में साल का वह समय होता है जब साहित्य और पठन को प्राथमिकता दी जाती है। हालांकि, कई वैश्विक सर्वेक्षणों से पता चलता है कि आजकल कम लोग किताबें पढ़ रहे हैं। इसके विपरीत, विज्ञान लगातार यह दिखा रहा है कि पढ़ना केवल एक आनंददायक गतिविधि नहीं है; बल्कि, यह एक प्रकार का संज्ञानात्मक व्यायाम है जो सचमुच हमारे मस्तिष्क को आकार दे सकता है।

यूनिवर्सिटी पेरिस डेसकार्टेस में विकासात्मक मनोविज्ञान और शिक्षा के

संज्ञानात्मक तंत्रिका विज्ञान के प्रोफेसर, ग्रेगोइरे बोर्स्ट ने फ्रांस 24 इंग्लिश को बताया, पढ़ने से आपके मस्तिष्क में सूचना प्रसंस्करण के नए रास्ते बनते हैं... आप जिस प्रकार की पुस्तक पढ़ते हैं, उसके आधार पर इसके अलग-अलग प्रभाव होते हैं।

फ्रांसीसी प्रसारक के साथ अपने साक्षात्कार में, बोर्स्ट की अंतर्दृष्टि बताती है कि कैसे प्रतिदिन केवल 10 मिनट पढ़ने से भी हमारी सोच तेज हो सकती है, याददाश्त बढ़ सकती है और संज्ञानात्मक गिरावट से भी बचा जा सकता है। प्रोफ़ेसर ने बताया कि किताबें पढ़ने से नये तंत्रिका पथ बनते हैं। उनके अनुसार, उपन्यास पढ़ने से दूसरों की भावनाओं और दृष्टिकोणों को समझने की हमारी क्षमता विकसित होती है। मनोवैज्ञानिक इसे मन का सिद्धांत कहते हैं। उन्होंने कहा, यह दिलचस्प है क्योंकि पढ़ना एक एकांतिक गतिविधि है, लेकिन इसके लाभ सामाजिक हैं। उपन्यास हमें मानसिक अवस्थाओं, इरादों और भावनाओं को समझने में मदद करते हैं, जो सार्थक मानवीय संपर्क के लिए महत्वपूर्ण हैं।

दूसरी ओर, नॉन फिक्शन साहित्य पढ़ने से कौशलों का एक अलग नेटवर्क विकसित होता है। बोर्स्ट ने कहा, जब आप तथ्यात्मक पुस्तकें पढ़ते हैं, तो आप अपने ज्ञान के आधार का विस्तार करते हैं और अपनी आलोचनात्मक सोच को मज़बूत करते हैं। जितना अधिक आप पढ़ते हैं, उतनी ही बेहतर ढंग से आप जानकारी पर सवाल उठाने और अपने आस-पास की दुनिया का विश्लेषण करने में सक्षम होते हैं।

चाहे कोई उपन्यास पढ़े या आत्मकथाएं, तंत्रिका विज्ञानी के अनुसार, मुख्य बात है आत्म-ज्ञान। आप जिस भी प्रकार को पसंद करते हैं, दोनों ही लाभ पहुंचाते हैं। और जीवन की अधिकांश चीज़ों की तरह, दोनों का मिश्रण आदर्श होता है।

पढ़ने के बारे में बात करते हुए, बोर्स्ट ने कहा कि इसे अद्वितीय रूप से शक्तिशाली बनाने वाली चीज़ है इससे उत्पन्न होने वाली मानसिक उत्तेजना। ऐसा इसलिए है क्योंकि पढ़ते समय हम पात्रों, दृश्यों और भावनाओं की मानसिक छवियां बनाते हैं।

बोर्स्ट ने कहा, आप पात्रों और उनके इरादों के बीच अंतःक्रियाओं की कल्पना करते हैं। यह मानसिक व्यायाम वास्तविक जीवन में हम जो करते हैं, उसे प्रतिबिंबित करता है जब हम दूसरों के साथ सहानुभूति रखने या उनके दृष्टिकोण को समझने की कोशिश करते हैं।

उन्होंने बताया कि यह दृश्यीकरण प्रक्रिया कल्पना, सहानुभूति और भावना विनियमन से संबंधित तंत्रिका परिपथों को मज़बूत करती है। इसके विपरीत, स्क्रीन-आधारित या विशुद्ध तथ्यात्मक जानकारी इन क्षेत्रों में शायद ही कभी इतनी गहराई से सक्रिय होती है।

आजकल, कई रिपोर्टें डिमेंशिया से बचाव के लिए पढ़ने के फायदों का दावा करती हैं। इस बारे में पूछे जाने पर, बोर्स्ट ने माना कि इन रिपोर्टों में कुछ सच्चाई है, लेकिन कुछ बारीकियों के साथ। कोई भी संज्ञानात्मक रूप से सक्रिय गतिविधि डिमेंशिया के जोखिम को कम करने में मदद करती है... पढ़ना विशेष रूप से अच्छा है क्योंकि यह एक साथ कई संज्ञानात्मक संसाधनों - ध्यान, स्मृति, तर्क और भाषा - को सक्रिय करता है।

बोर्स्ट ने बताया कि पढ़ने से कार्यशील स्मृति (वर्किंग मेमोरी) मजबूत होती है, जो मस्तिष्क की वह प्रणाली है जो कम समय में जानकारी को धारण करती है और उसका उपयोग करती है। उन्होंने कहा, जब आप पढ़ते हैं, तो आपको पृष्ठ की शुरुआत में जो देखा था उसे अंत में जो दिखाई देता है उससे जोड़ना होता है। सैकड़ों पृष्ठों पर ये कार्य करने से आपकी कार्यशील स्मृति प्रशिक्षित होती है।

कार्यशील स्मृति सफलता के सबसे मजबूत भविष्यवाणियों में से एक है - स्कूल में, काम पर और जीवन भर। शायद यहां सबसे बड़ी सीख यह है कि अपने मस्तिष्क को सक्रिय रखना किसी भी एक 'दिमागी खेल' से कहीं ज़्यादा मायने रखता है।

आप जीवन भर जितने अधिक संज्ञानात्मक रूप से सक्रिय रहेंगे, उम्र बढ़ने के साथ आपका मस्तिष्क उतना ही स्वस्थ होगा। जब ध्यान अवधि कम हो रही हो, तो सबसे बड़ा सवाल यह है कि कितना पढ़ना पर्याप्त है? तो, लाभ देखने के लिए कितनी बार पढ़ना चाहिए? बोर्स्ट ने चुटकी लेते हुए कहा, एक किताब न पढ़ने से बेहतर है।

हालांकि, उन्होंने स्वीकार किया कि आवृत्ति उम्र और कौशल स्तर पर निर्भर करती है। उन्होंने कहा, पढ़ना सीखने वाले बच्चों के लिए, दोहराव महत्वपूर्ण है। पढ़ने के शुरुआती चरणों में सहज महसूस होने से पहले बहुत अभ्यास की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, वयस्क छोटी-छोटी, नियमित आदतों से भी लाभ उठा सकते हैं। उन्होंने कहा, रोज़ाना दस मिनट पढ़ना पहले से ही उपयोगी है। महत्वपूर्ण बात यह है कि यह संज्ञानात्मक रूप से चुनौतीपूर्ण हो – ऐसा कुछ जो आपके ध्यान और कल्पनाशीलता को चुनौती दे, न कि केवल स्क्रॉल करने या टेक्स्ट करने से।

बच्चों के विकास की बात करें तो, पढ़ने के साथ-साथ, बोर्स्ट ने सुनने के महत्व पर भी प्रकाश डाला। इस तंत्रिका विज्ञानी का मानना है कि कहानियां सुनना बच्चे के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह बिल्कुल पढ़ने जैसा नहीं है, लेकिन यह ज़रूरी है। उन्होंने कहा कि मौखिक भाषा के संपर्क से शब्दावली निर्माण में मदद मिलती है। और, बोर्स्ट के अनुसार, यह आगे के चरणों में पढ़ने की क्षमता का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है।

बोर्स्ट के अनुसार, मस्तिष्क में, पढ़ना दृश्य जानकारी को भाषा से जोड़ता है, और इसलिए, बच्चे का भाषाई आधार जितना मज़बूत होगा, वह पढ़ने में उतना ही बेहतर होगा। यही कारण है कि बच्चों का एक ही कहानी को बार-बार सुनने का शौक कोई बुरी आदत नहीं है। उनके अनुसार, यह उनके मस्तिष्क को भाषाई पैटर्न का अनुमान लगाने, समझने और याद रखने का प्रशिक्षण देता है। आज के समय में एक और बहस स्मार्टफोन, टैबलेट और यहां तक कि किंडल जैसी स्क्रीन के पढ़ने की समझ पर पड़ने वाले प्रभाव को लेकर है। जब उनसे पूछा गया कि क्या डिजिटल किताबें कागज़ वाली किताबों जितनी अच्छी होती हैं, तो बोर्स्ट ने जवाब दिया, बिल्कुल नहीं। उनके अनुसार, स्क्रीन पर पढ़ते समय हम थोड़े कम कुशल होते हैं।

यह सिर्फ़ आदत की बात नहीं है। भौतिक किताबें स्थानिक जानकारी प्रदान करती हैं – आप पन्नों के वज़न और मोटाई के आधार पर कहानी में अपनी जगह का अंदाज़ा लगा सकते हैं। और यह भौतिकता स्मृति निर्माण में मदद करती है। उन्होंने कहा, पैराग्राफ, पृष्ठ संख्याएं, और यहां तक कि पृष्ठ पर पाठ का स्थान भी आपके मस्तिष्क को संकेत देता है। ये मानसिक स्थलों की तरह काम करते हैं जो याददाश्त में मदद करते हैं। उनका दावा है कि एक जैसी स्क्रीन पर स्क्रॉल करने या फ़्लिप करने से वह स्थानिक आधार हट जाता है, जिससे विवरणों को याद रखना मुश्किल हो जाता है।

जबकि हम हर तरह के विकर्षणों से घिरे रहते हैं, प्रोफ़ेसर बोर्स्ट हमें पढ़ने को एक अनुष्ठान के रूप में अपनाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। हम पहले से ही अपना दिन पढ़ने में बिताते हैं – टेक्स्ट मैसेज, साइनबोर्ड, ईमेल। लेकिन किताब पढ़ना अलग है। यह ज़्यादा गहरा, ज़्यादा केंद्रित और ज़्यादा मेहनत वाला होता है। दिन के वो दस शांत मिनट एक मानसिक व्यायाम सत्र की तरह होते हैं – छोटे, लगातार और बदलाव लाने वाले।

संक्षेप में, अगर आपको अपने स्मार्टफ़ोन की बजाय कोई उपन्यास उठाने में अपराधबोध हो रहा है, तो बस याद रखें कि आपका दिमाग़ इसके लिए आभारी होगा। पढ़ना न सिर्फ़ हमारी कल्पनाशीलता का विस्तार करता है, बल्कि एक-एक पन्ने पर हमारी पहचान के तंत्रिका आधार को भी मज़बूत करता है।❑

क्या संतान जीवन में स्थायित्व और प्रसन्नता लाती है?

❑

❑

डॉ. लता व्यास

नई पीढ़ी के युवा जब संतान को अपनी प्रगति में बाधक मन रहे हैं ऐसे में लेखिका एक दिलचस्प अध्ययन से परिचय करा रही है जिसमें यह खोजने की चेष्टा की गई है कि क्या संतान का जीवन में स्थायित्व व प्रसन्नता से कोई सम्बन्ध है? सं.

जर्मनी के कोलोन विश्वविद्यालय द्वारा पूरे यूरोप में किए गए अध्ययन से पता चला है कि जिन लोगों के बच्चे हैं, वे अपने ीवन को ज्यादा अर्थपूर्ण और मूल्यवान तो मानते हैं, लेकिन उनके जीवन की कुल संतुष्टि अपेक्षाकृत कम है। यह अध्ययन यूरोप के 30 देशों में 43,000 से अधिक प्रतिभागियों पर आधारित है। यह 'जर्नल ऑफ मैरिज एंड फैमिली' में प्रकाशित हुआ है।

शोधकर्ता डॉ. आंसगार हुडे कहते हैं कि जिनके बच्चे होते हैं, वे अपने जीवन को अधिक उद्देश्यपूर्ण मानते हैं, लेकिन यह जरूरी नहीं कि वे ज्यादा खुश या संतुष्ट हों। कई बार बच्चों वाले माता-पिता, बिना बच्चों वाले लोगों की तुलना में कम संतुष्ट पाए गए। यह विरोधाभास समाजशास्त्रियों के लिए महत्वपूर्ण और चौंकाने वाला है, क्योंकि पारंपरिक रूप से माना जाता रहा है कि संतान जीवन में स्थायित्व और प्रसन्नता लाती है।

यह अध्ययन दो पहलुओं को केंद्र में रखकर किया गया। जीवन से संतुष्टि और जीवन में अर्थ का अहसास। शोध में पाया गया कि हालांकि माता-पिता अपने जीवन को अधिक सार्थक मानते हैं, लेकिन वे अपने दैनिक जीवन से उतने संतुष्ट नहीं होते। यह असंतोष विशेष रूप से महिलाओं में अधिक देखा गया, खासकर उन महिलाओं में जो अकेली मां हैं, कम उम्र की मां हैं, जिनकी शिक्षा कम है या जो उन देशों में रहती हैं जहां चाइल्डकेयर की सुविधाएं कमजोर हैं। डॉ. हुड्डे के अनुसार, जहां भी पैरेंटिंग अधिक कठिन होती है, वहां संतुष्टि की कीमत पर जीवन में अर्थ जुड़ता है।

इस अध्ययन का एक दिलचस्प पहलू यह था कि स्कैंडिनेवियाई देशों, जैसे स्वीडन, नॉर्वे और डेनमार्क में माता-पिता दोनों ही मोर्चों पर बेहतर महसूस करते हैं। वहां ना केवल जीवन अधिक अर्थपूर्ण लगता है, बल्कि माता-पिता अपने जीवन से संतुष्ट भी हैं। इसका मुख्य कारण है कि इन देशों में सरकारी नीतियों के जरिए माता-पिता को समय, पैसे और संस्थागत समर्थन के स्तर पर बड़ी राहतें दी जाती हैं। डे-केयर की उपलब्धता, पेरेंटल लीव और आर्थिक सहायता जैसी योजनाएं वहां माता-पिता के लिए जीवन को आसान बनाती हैं। इस शोध के जरिए नीति-निर्माताओं को यह समझने का अवसर मिल सकता है कि अगर वे समाज को खुशहाल देखना चाहते हैं, तो उन्हें माता-पिता को सिर्फ नैतिक नहीं, बल्कि आर्थिक और संस्थागत सहारा भी देना होगा। ❑

हुसैन की कलात्मक विरासत को संजोता संग्रहालय
लौह वा क़लम: एम.एफ़. हुसैन

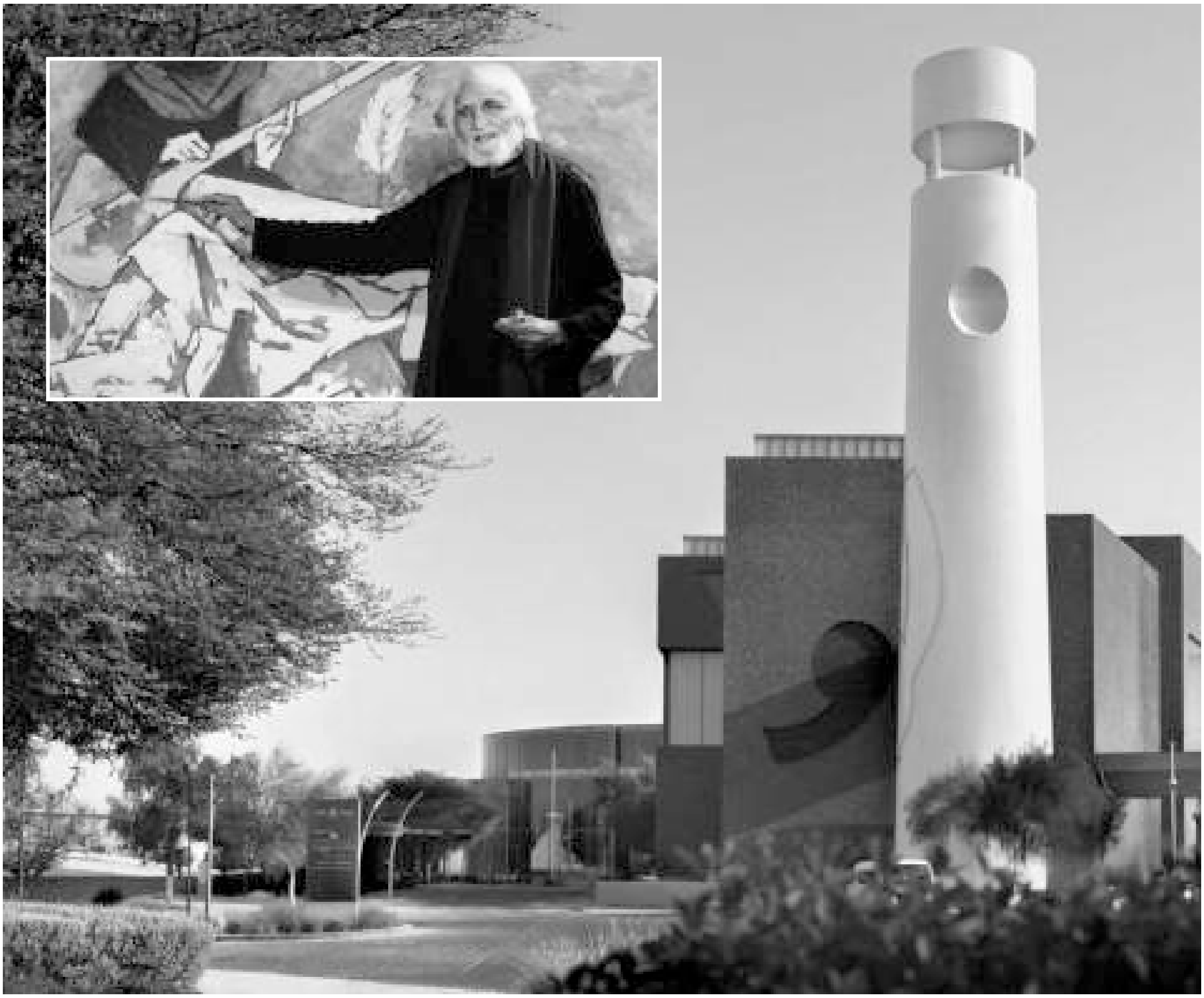

जाने-माने कलाकार मकबूल फ़िदा हुसैन के चित्रों का दुनिया का सबसे बाद म्यूज़ियम दोहा क़तर फ़ाउंडेशन ने स्थापित किया है। लगभग 32,000 वर्ग फुट क्षेत्र में फैला लौह वा क़लम: एम.एफ़. हुसैन संग्रहालय दुनिया का पहला और सबसे बड़ा संस्थान है जो मशहूर चित्रकार मकबूल फ़िदा हुसैन की कलात्मक विरासत को संजोता है। गत 28 नवंबर को इसे जनता के लिए खोल दिया गया। इसमें 1950 के दशक से लेकर 2011 में कलाकार के निधन तक के चीतों का उल्लेखनीय संग्रह है। यह हुसैन की अनमोल कृतियों को संरक्षित करता है: उनकी पेंटिंग, फ़िल्में, तस्वीरें और स्थापनाएँ इंस्टालेसन।

इस संग्रहालय का डिज़ाइन दिवंगत कलाकार द्वारा वर्षों पहले बनाई गई एक कलाकृति पर आधारित है, जिसमें उन्होंने कल्पना की थी कि उनका संग्रहालय एक दिन कैसा दिखेगा। यह कलाकृति, जिसमें एक नीला घर और एक सफ़ेद मीनार है, बेहद प्रभावशाली है। वास्तुकार मार्तंड खोसला कहते हैं, मैंने कलाकार, रेखाचित्र और उनके जीवन और कृतियों के बारे में अपनी खुद की समझ के साथ कई काल्पनिक बातचीत की। जिस चीज़ ने मुझे सबसे ज़्यादा प्रभावित किया, वह थी रेखाचित्र में कैद दुनिया का विशाल विस्तार। मैंने मध्य एशिया की टाइलें, यमन की बहुमंजिला मिट्टी

हुसैन द्वारा वर्षों पहले बनाई गई कलाकृति पर आधारित है संग्रहालय का डिज़ाइन

की इमारतें, रेगिस्तान के तंबू और पेरिस्कोप देखे।

खोसला, जिन्होंने 2022 में इस परियोजना पर काम शुरू किया था, के लिए यह संग्रहालय एक व्यक्तिगत उपलब्धि है। दिल्ली में पले-बढ़े होने के दौरान, वे उसी इमारत में रहते थे जहाँ हुसैन का स्टूडियो था। खोसला कहते हैं, हुसैन मेरे दादाजी को अच्छी तरह जानते थे। दरअसल, कहीं न कहीं, उनका बनाया एक चित्र मौजूद है। 2006 में, खोसला ने जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में एम.एफ. हुसैन आर्ट गैलरी भी डिज़ाइन की। कई मायनों में, एजुकेशन सिटी स्थित दोहा संग्रहालय, कलाकार और वास्तुकार के बीच इस दीर्घकालिक संबंध का ही एक विस्तार लगता है।

परियोजना के शुरुआती चरणों में, खोसला, कतर फाउंडेशन और कला समीक्षक रंजीत होसकोटे के बीच कई बातचीत हुईं, जिससे संग्रहालय के दार्शनिक ढाँचे को परिभाषित करने में मदद मिली। वास्तुकला हुसैन की दृश्य भाषा को भौतिक क्षेत्र में विस्तारित करती है, जिससे संरचना, प्रकाश और गति आगंतुकों के अनुभव को आकार देती है, और कला और ज्ञान के बीच संबंध को गहरा करती है।

किसी कलाकृति को एक निर्मित स्थलचि में बदलना कोई आसान काम नहीं है। खोसला कहते हैं, एक कलाकृति किसी स्थल या संरचना से बंधी नहीं होती। यह एक काल्पनिक विचार है, एक काल्पनिक स्थान पर। हालाँकि नीली इमारत और मीनार मुख्य आधार के रूप में काम करती थी, केवल रेखाचित्र संस्थान के पूरे कार्यक्रम को समाहित नहीं कर सकता था।

खोसला ने हुसैन की दृश्य भाषा से प्रेरणा लेते हुए उस इमारत का अध्ययन किया जिसमें दिवंगत कलाकार की अंतिम कृति – सीरू फ़ि अल अर्द स्थित है। हुसैन द्वारा परिकल्पित, विशाल काँच का मंडप संग्रहालय स्थल के निकट स्थित है। इसके स्वरूप से प्रेरणा लेते हुए, खोसला ने एक वास्तुशिल्पीय शब्दावली विकसित की जिसने लौ वा क़लम परिसर के शेष भाग को आकार दिया। खोसला बताते हैं, इस संग्रहालय में कई स्थानिक तत्व हैं जो मुख्य केंद्रीय सीढ़ी के चारों ओर एकत्रित होते हैं, जिसे मैं न केवल मुख्य प्रवेश द्वार के रूप में देखता हूँ, बल्कि एक बहुआयामी काज के रूप में भी देखता हूँ जो नीले घर और भूरे घर को जोड़ता है और बगल के सीरू फ़ि अल अर्द के साथ प्रतिक्रिया करता है।

हुसैन की कल्पित दुनिया को जीवंत करने में उन्होंने न केवल एक संग्रहालय बनाया है, बल्कि एक ऐसा स्थान बनाया है जहाँ कला, इतिहास और विरासत का संगम होता है। ❑

– राधिका अयंगर

वास्तुकार मार्तंड खोसला

लेख

वर्तमान समय में एक चिकित्सक का जीवन वृत्त

❑

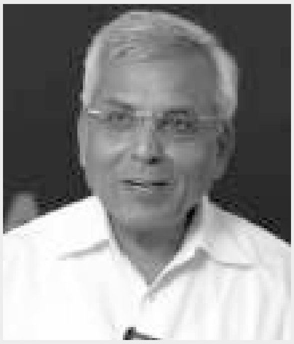

❑

डॉ. विवेक एस. अग्रवाल

इन दिनों जब डॉक्टरों पर बाज़ार के मुनाफे के लिए हो जाने के लांछन लग रहे हैं, डॉ. अग्रवाल चिकित्सकों के जीवन और संघर्ष का दूसरा पक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। सं.

चिकित्सकों के बारे में आमजन में अनेक भ्रांतियां हैं। उन्हें अब एक व्यवसायी के रूप में देखा जाने लगा है और आम तौर पर यह माना जाता है कि चिकित्सक मात्र व्यवसायिक दृष्टिकोण रखता है और उसका जीवन अत्यंत सुगम एवं तनावरहित होता है। चिकित्सक के बारे में ऐसी जन-धारणा बन जाने के अनेक कारण गिनाए जा सकते हैं, किन्तु इसके साथ ही हमें चिकित्सक बनने से लेकर उसके जीवन निर्वहन की गाथा को भी समझना अत्यंत आवश्यक है।

चिकित्सक बनना अपने आप में सरल कार्य नहीं है, और यदि बन भी गए तो वर्तमान प्रतिस्पर्धीयुग में स्वयं की पहचान बचाए रख पाना अत्यंत कठिन है। कितने लोगों को पता है कि चिकित्सक समुदाय के लोग अन्य तकनीकी व्यवसायों की तुलना में एक प्रतिशत भी आय अर्जित नहीं कर पाते हैं। लोगों को उनसे अपेक्षाएं, हिमालय जितने ऊंचे स्तर की होती है। अपेक्षा की जाती है कि एक चिकित्सक हफ्ते के सातों दिन 24 घंटे मरीजों के लिए उपलब्ध रहे।

यदि हम सर्वश्रेष्ठ उदाहरण भी ले तो 17-18 वर्ष की आयु में किसी भी सरकारी या निजी मेडिकल कॉलेज में प्रविष्ठ एक छात्र लगभग 30 वर्ष की आयु होने तक अपना व्यावसायिक जीवन प्रारम्भ कर पाता है। अपने पहले पड़ाव के रूप में 23-25 वर्ष की आयु में वह स्नातक डिग्री यानी एम.बी.बी.एस. उत्तीर्ण करता है, जो की वर्तमान संदर्भ में अत्यंत बेसिक हो जाती है। मात्र परिस्थितिवश ही कोई इस स्तर पर अग्रिम शिक्षा को छोड़ते हुए ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी नौकरी या निजी प्रैक्टिस में लगता है। कुछेक शहरी निजी अस्पतालों में नौकरी करने लगते है। अनेक चिकित्सा व्यवसाय की अपरिमित मांग, दबाव, तनाव व अपेक्षा स्तर को देखते हुए अन्य व्यवसाय को अपना लेते है।

एक समय था जब एमबीबीएस की परीक्षा पास करने के बाद अनिवार्य इंटर्नशिप प्रायोगिक एवं वास्तविक परिस्थितियों का प्रत्यक्ष ज्ञान करवाती थी, किंतु स्नातकोत्तर डिग्री प्रवेश परीक्षा की जटिलता ने उसे अप्रासंगिक बना दिया है, जो एक अच्छा संकेत नहीं है। विभिन्न माध्यमों से जैसे सरकारी एवं निजी चिकित्सा महाविद्यालयों में प्रतियोगी परीक्षा अथवा पूंजी आधारित प्रवेश पाकर एम.डी. या एम.एस. की तरफ छात्र आमुख होते है, जिसे वे 26-28 वर्ष की आयु में जाकर पूर्ण

कर पाते हैं। असल में यहीं से एक चिकित्सक की जीवनयात्रा प्रारंभ होती है। उसे विकल्प के तौर पर सरकारी, ग़ैर सरकारी के संस्थानों के अलावा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं, परामर्शी संस्थाओं में नौकरी के अवसर मिलते है जो कि मूलतः शैक्षणिक, क्लिनिकल प्रैक्टिस, प्रशासकीय, जनस्वास्थ्य संबंधी होते है। निजी क्षेत्र में नौकरी के अवसर मेडिकल कॉलेज, कॉर्पोरेट अस्पताल, विशेषज्ञ अस्पतालों के साथ अन्य अस्पतालों, ग़ैर सरकारी संगठनों में विभिन्न शर्तों के आधार पर औसतन 60 से 70 हज़ार रुपये प्रतिमाह पर उपलब्ध होते है। इस अवस्था में कुछेक चिकित्सक विदेशों में अग्रिम अध्ययन अथवा रोजगार की तलाश करते हुए पलायन कर जाते है तो कुछ भारत में ही अग्रिम अध्ययन की तैयारी में लग जाते है। इस पड़ाव पर भी कुछ लोग चिकित्सकीय पेशे से विमुख होते हुए अन्य उद्योग-व्यवसाय में लग जाते है। आजकल कुछेक चिकित्सक प्रशासनिक सेवाओं का रूख भी कर लेते है।

सुपर स्पेशियालिटी की चाह रखने और अवसर प्राप्त करने वाले चिकित्सक 29 से 31 वर्ष के बीच डी.एम. या एम.सी.एच. की डिग्री हासिल कर पाते हैं। अतिविशिष्ट होने से अवसर भी सीमित होते है, लेकिन आय लगभग एक लाख रुपये प्रतिमाह से प्रारंभ हो जाती है। चिकित्सा शिक्षा में आवश्यक श्रम, समर्पण एवं निरंतरता को देखते हुए आय के यह स्तर गौण प्रतीत होते है।

यदि चिकित्सक नौकरी करता है तो उस पर अन्य व्यवसायिक कर्मियों की तरह लक्ष्य अर्जित करने के दबाव भी रहते है और साथ ही प्रतिस्पर्धी एवं सदैव चुस्त तथा उपलब्ध रहने की चुनौती भी। यदि वह स्नातकोत्तर शिक्षा के पश्चात यदि वह निजी चिकित्सा व्यवसाय को चुनता है तो उसे कर्ज़ के बोझ में दबे रहते ही जीवन गुजारना होता है। सामान्यतया चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में प्रयुक्त उपकरण एवं मशीनरी लगातार 3-4 वर्ष के बाद नवीनीकरण चाहती है। जब तक वह पूर्व की मशीन या उपकरण का ऋण चुकता है तब तक नई टेक्नोलॉजी आ जाती है और उसे नई मशीनें व उपकरण खरीदने पड़ते हैं और उसका ऋण चक्र पुनः प्रारंभ हो जाता है। यह शृंखला अनवरत बनी रहती है। यदि सरकारी आकड़ो को भी माना जावे तो चिकित्सक प्रतिवर्ष औसतन साढ़े पांच से छह लाख रुपये तक अर्जित करता है, जो कि आमतौर पर किसी प्रौद्योगिक स्नातक के प्रारंभिक वेतन के समकक्ष है। इस पर भी आम सोच में चिकित्सक को पैसे का भूखा समझा जाता है। हाल ही में राज्य सरकार ने संविदा पर 28 हज़ार प्रतिमाह के वेतन पर चिकित्सकों को काम पर रखा है। एक चिकित्सक जीवनपर्यंत मानसिक तनाव में रहता है। पहले अध्ययन, फिर प्रतिस्पर्धा एवं तत्पश्चात हर मरीज के उपचार को लेकर निरंतर बना रहने वाला तनाव क्योंकि एक चिकित्सक के लिए कोई भी मरीज एक वस्तु नहीं अपितु एक सजीव इंसान होता है और चिकित्सक उसके बोझ को लेकर चलता है कि उसे येन-केन-प्रकरेण मरीज को स्वस्थ करना है। हाल ही में देश में चिकित्सकों में बढ़ते मस्तिष्क एवं हृदयघात इसके द्योतक है। किसी भी चिकित्सक के लिए प्रत्येक मरीज कितना महत्वपूर्ण होता है, इसका अंदाजा मेरे सामने प्रत्यक्ष दो प्रसंगों से लगाया जा सकता है। चिकित्सक के लिए मरीज ही प्रथम होता है अन्य कोई कारक नहीं।

प्रथम प्रसंग वर्ष 1985-86 का है, जब सवाई मानसिंह मेडिकल कॉलेज के तत्कालीन प्राचार्य पद्मश्री डॉ. शीतल राज मेहता ने भारी सर्दियों की आधी रात को अपने संपूर्ण मनोयोग एवं परिश्रम से मस्तिष्क ज्वर से पीड़ित एक मरीज को सुबह तक प्रयास करके बचाया। वह मरीज उस पत्रकार का अनुज था जो उनकी कार्यशैली को लेकर लगातार आलोचनात्मक खबरें प्रकाशित कर रहा था। मगर चिकित्सक मेहता के लिए मरीज का इलाज सर्वोपरि था।

एक अन्य प्रसंग याद आता है जब इसी मेडिकल कॉलेज के पूर्व प्राचार्य डॉ. राजीव बगरहट्टा ने अपनी वरिष्ठता और समस्त प्रोटोकॉल को तिलांजलि देते हुए मस्तिष्काघात से पीड़ित मरीज के उपचार के लिए अपने से बहुत कनिष्ठ चिकित्सक के जूनियर पार्टनर की भूमिका अदा की। समय की मांग को देखते हुए एक पल भी बेकार किए बिना वे मध्यरात्रि से भोर तक लगभग छह घंटे किसी भी तरह मस्तिष्क में जमे थक्के को हटाने के लिए अपने सहयोगी के साथ बिना संकोच और सीमाओं के अडिग झूझते रहे।
उक्त दोनों प्रसंग बानगी के तौर पर यह बताने के लिए प्रस्तुत किए गये हैं कि किसी भी चिकित्सक का मन, मरीज एवं मानवता के लिए ही धड़कता है, न कि मनी या पैसे के लिए। ❑

राजेन्द्र भाणावत

शिक्षकों की समाज में स्थिति पहले जैसी प्रतिष्ठा क्यों नहीं रही? क्यों प्रतिभाशाली विद्यार्थी शिक्षक नहीं बनना चाहते? इसी पर भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी रहे भाणावत इस आलेख में अपना नज़रिया प्रस्तुत कर रहे हैं। सं.

शिक्षा सामाजिक बदलाव की वाहक कैसे बने!

पि सामान्यतः समाज, शिक्षक और शिक्षार्थी का सम्बन्ध जीवनपर्यंत बना रहता है। शिक्षा समाज की आवश्यकताओं से कितनी दूर हो गई है, यह समझने के लिए मुझे उदयपुर विद्याभवन के बुनियादी शिक्षा के प्रसिद्ध शिक्षक दयालचंद जी सोनी का स्मरण हो रहा है। दयालजी 'माड़साब' की शिक्षा की दृष्टि सर्वांगीण विकास की थी। और उनकी जीवनदृष्टि गांधी और विनोबा से प्रेरित थी।

उनके अनुसार मैकाले की शिक्षा पद्धति का एक ही उद्देश्य था - शोषित, वंचित और शासक वर्ग से निकल कर शासक, सम्पन्न और शासक वर्ग में सम्मिलित होना। इसे उन्होंने 'वर्गोदय' शिक्षा का नाम दिया जबकि आवश्यकता सर्विदयी शिक्षा की थी। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि शिक्षा कैसी और क्या हो यह समाज के साथ संवाद पर आधारित होनी चाहिये। उन्होंने अपनी बात एक शिक्षार्थी के मुंह से लंबी कविता के रूप में कहलवाई थी। यह मेवड़ी में है जिसका शीर्षक है म्हूं अणभणियों शिक्षित हूं। जिसका अर्थ है मैं बिना पढ़-लिखा शिक्षित हूं। शिक्षा के मूल मर्म को समझने की इच्छा रखने वाएल प्रत्येक व्यक्ति को यह पुस्तिका अवश्य पढनी चाहिये। इस कविता के भाव को सभी के साथ साझा करने का मन कर रहा है।

दयालजी ने यह स्पष्ट किया कि स्कूल जाना और शिक्षा प्राप्त करना एक समान नहीं है। उन्होंने इस कविता में चिंता व्यक्त की कि यदि अंग्रेजों के द्वारा दी गई शिक्षा व्यवस्था इसी प्रकार हमने जारी रखी और स्कूलों को ही शिक्षा का पर्याय मान लिया तो देश की प्रगति संभव नहीं है। उनके अनुसार हम बच्चों को केवल 'स्कूलित' कर रहे हैं न कि शिक्षित। जब तक शिक्षा मानव के लिए बहुत आवश्यक गुण, जैसे सदाचार, सहकार, संवेदनशीलता आदि के गुण विद्यार्थियों में विकसित नहीं कर सके तो उसे शिक्षा नहीं कहा जा सकता।

दयालजी उन 18 ग्रामीण शिक्षाविदों में शामिल थे जिन्हें 1954 में डेनमार्क की शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन करने हेतु भेजा गया था। आज आवश्यकता है उनके विचारों पर संवाद करने की और उन्हें हमारी शिक्षा व्यवस्था में स्थान देने की, ताकि

दिया गया है। मान लिया गया कि जो छात्र स्कूल में नामांकित नहीं है वे ही बाल श्रमिक हैं। बच्चों का नामांकन तो स्कूलों में हो गया लेकिन यह ध्यान नहीं रखा गया कि केवल नामांकन हो जाने से बच्चे शिक्षित नहीं हो जाते। बाल श्रम आज भी देश में वास्तविकता है। अनौपचारिक शिक्षा को बेहतर करने के स्थान पर इसे बंद करके हमने एक बहुत बड़े निर्धन वर्ग को शिक्षा से वंचित कर दिया। बाल श्रमिकों के लिए जो वैकल्पिक साधन उपलब्ध था वह भी नहीं रहा। इस प्रकार बाल श्रमिकों की बड़ी संख्या बड़ी होकर निरक्षर ही रहेगी।

यदि हम शिक्षकों का वही पुराना सम्मान लौटाना चाहते हैं तो हमें संकल्प लेना होगा कि हम शिक्षा को तंत्र से मुक्त करेंगे। शिक्षक अपने विद्यार्थियों के साथ अधिक से अधिक समय बिताएं और तबादले की तलवार से मुक्त रहें। उन्हें शिक्षा अधिकारियों, मंत्रियों और राजनेताओं के दरवाजों पर चक्कर लगाने के लिए बाध्य न होना पड़े।

शिक्षण प्रशिक्षण व्यवस्था में भी आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है। इस दिशा में सरकार, समाज और शिक्षक सबको मिल-बैठ कर मंथन करना होगा तभी शिक्षा वास्तव में सामाजिक बदलाव का माध्यम बन पाएगी। ❑

हमारी शिक्षा समाज और देश के लिए अधिक उपयोगी नागरिक तैयार कर सके।

उनका यह भी मानना था कि शिक्षा विद्यालय के बाहर भी होती है, घर में भी होती है और वातावरण से भी ग्रहण किया जाता है। शिक्षक का कार्य विद्यार्थी को ऐसा वातावरण उपलब्ध कराना होना चाहिये जिसमे वह जिज्ञासु बन सके और अपनी जिज्ञासाओं का उत्तर ढूंढने के लिए उसमें खोजी प्रवृत्ति विकसित हो सके।

क्या उस प्रकार का शिक्षक आज हम तैयार कर रहे हैं? खेद का विषय है कि ऐसा नहीं हो रहा है। अधिकांश शिक्षक आज विद्यार्थियों को केवल कुंजियों या पासबुक के माध्यम से कुछ उत्तर रट कर परीक्षा में उत्तीर्ण होने के नुस्खे बताने तक सीमित रह गये हैं। जब विद्यार्थी केवल गुटके या पासबुक पढ़ कर परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे तो वह किस प्रकार के युवा बन कर निकलेंगे इसके नमूने हम देख ही रहे हैं।

ऐसा लगता है जैसे उचित-अनुचित तरीकों से परीक्षा पास करना ही उनका एकमात्र उद्देश्य रह गया है, चाहे वह स्कूल-कालेज की परीक्षा हो या कोई प्रतियोगी परीक्षा।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षकों की भूमिका को अच्छी तरह रेखांकित किया गया है किन्तु उसके लिए आवश्यक है कि सरकार पर्याप्त मानव और वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराए। शिक्षा को समुदाय केंद्रित बनाए। जब तक समाज और शिक्षा एक दूसरे से जुड़े नहीं रहेंगे तब तक 'ड्रॉप आउट' की समस्या बनी रहेगी।

बाल श्रमिकों के लिए अनौपचारिक शिक्षा की जो व्यवस्था थी, उसे बहुत पहले ही बंद कर

सरकार शिक्षा की सुविधाकर्ता है नियंत्रक नहीं!

❑

केंद्र सरकार में सचिव रहे भारतीय प्रशासनिक सेवा के पूर्व अधिकारी एस. एन. आचार्य का पिछले दिनों दूसरा दशक, संधान और राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के संयुक्त तत्वावधान में अनिल बोर्डिया स्मृति व्याख्यानमाला का इस वर्ष का लेक्चर हुआ। इसमें व्याख्यानकर्ता के जीवन के अनुभवों से उपजा एक सादा लेकिन गहन आत्मसंवाद रहा जिसमें शिक्षा, समाज और सीखने की प्रकियाओं को समझने का मानवीय प्रयास की झलक मिली। इस व्याख्यान को संधान के निदेशक सुनील शेखर ने आलेख के रूप में प्रस्तुत किया है। सं.

रा अपने प्रारम्भिक प्रशासनिक सेवा काल में क्योंकि मैं केंद्रीय विद्यालय संगठन और सीबीएसई संस्थाओं से जुड़ा रहा इसलिए मुझे लगता था कि मुझे शिक्षा की अच्छी समझ है और मैं मानता था कि शिक्षा के क्षेत्र में प्रशासन बहुत अच्छा काम कर रहा है। लेकिन उस समय बोर्डिया जी ने मुझे शिक्षा की गहरी समझ दी। उन्होंने मुझे कहा आप अपना काम करते हुए एक अच्छे प्रशासक तो बन जाएंगे लेकिन शिक्षा को कभी नहीं समझ पाएंगे। उनका यह एक वाक्य मेरे लिए टर्निंग पॉइंट बन गया।

मुझे समझ में आया कि शिक्षा केवल एक प्रबंधन नहीँ है, बल्कि वह अनुभव, संवेदना और सहभागिता की प्रकिया है। इसके बाद ही मैंने शिक्षा के विभिन्न आयामों को समझना और जानना शुरू किया और मुझे धीरे-धीरे गैर-औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों से जुडने का अवसर मिला। यह अनुभव मेरे लिए एक नई दुनिया थी। स्कूलों की चार दीवारी के बाहर की शिक्षा। मेरे यह अनुभव पूरी तरह से आँखें खोलने वाले थे। मैंने जाना कि गावों और समुदायों में बच्चे और वयस्क बिना किसी औपचारिक ढांचे के भी सीखते हैं। काम करते हुए गीतों, लोक-कथाओं तथा जीवन के अनुभवों से भी सीखने और सिखाने की प्रक्रिया जारी रहती है। यह दीवारों के बिना शिक्षा थी जिससे मैं बहुत कुछ सीखा।

शिक्षाकर्मी परियोजना एक सफल सामुदायिक शैक्षिक पहल थी जिससे जुड़ पर मैंने महत्वपूर्ण अनुभव हासिल किए। इसके सूत्रधार अनिल बोर्डिया जी थे। इसमें समुदाय स्वयं शिक्षा की जिम्मेदारी संभालता था। बोर्डियाजी ने शिक्षा को लोगों का अधिकार ही नहीं, जन-जन की आवाज़ बना दिया। उन्होंने दिखाया कि जब लोग अपने स्कूल को अपना मानते हैं, तो वे उसका संरक्षण और संवर्धन भी करते हैं। यह परियोजना केवल स्कूल बनाने की नहीं थी; यह शिक्षा और

समाज के बीच सेतु बनाने की एक प्रकिया थी। जिसमें शिक्षक, बच्चे और समुदाय एक साझा यात्रा पर निकलते हैं। मेरा अपना अनुभव कहता है कि सरकार को यह समझना होगा कि वह सुविधाकर्ता है नियंत्रक नहीं। मेरा मानना है कि राज्य को एक ऐसा माहौल बनाना चाहिए जहां लोग स्वयं सीखने के अवसर बना सकें। सीखना एक पेड़ के बढ़ने जैसा है। यदि मिट्टी उपजाऊ हो तो वह स्वयं बढ़ेगा। सरकार का काम मिट्टी को उपजाऊ बनाना है, शाखाओं को दिशा देना या मोड़ना नहीं। मैंने अपने अनुभव से पाया है कि शिक्षा एक दुधारी तलवार है। यदि वह समानता की चेतना फैलाए तो समाज को ऊंचाई देती है। लेकिन यदि वह व्यावसायिक हो जाए तो समाज में असमानता की बड़ी खाई पैदा कर सकती है।

शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी या रोजगार ही नहीं होना चाहिए। उसे संवेदना, विवेक और चरित्र निर्माण की उपजाऊ ज़मीन बनना चाहिए।

औपनिवेशिक ढांचे के बनने से पहले भारत में शिक्षा की जड़ें में गहरी धंसी हुई थी। गांवों में अपने गुरुकुल और लोक विद्यालय हुआ करते थे। जहां सीखना जीवन से जुड़ा होता था। मैकाले की शिक्षा नीति ने हमें उस परंपरा से दूर कर दिया। अब समय है कि हम शिक्षा को फिर से जीवन और समुदाय से जोड़ें। सीखने को सांस्कृतिक प्रकिया बनाएं, न कि केवल परीक्षा पास करने का माध्यम।

अनिल बोर्डिया जी ने हमें यह सिखाया कि कोई नीति तभी सफल होती है जब उसमें आत्मा हो ˉ जब समुदाय उसमें शामिल हो। बोर्डियाजी का दृष्टिकोण था कि शिक्षा केवल साक्षरता नहीं, बल्कि सशक्तिकरण का माध्यम है। उन्होंने शिक्षा को संवेदनशील प्रशासन का रूप दिया जहां राज्य और समाज साझेदार बनकर काम करते हैं, न कि एक–दूसरे के विरोधी।

मेरे माता–पिता ने अपने बुढ़ापे में अपने गांव में एक छोटा स्कूल बनाया था। जन मैंने उनसे कहा कि आपकी इतनी उम्र हो गयी है अब आप आराम कीजिए। उन्होंने जवाब दिया हमें आराम नहीं बच्चों को पढ़ाने की जगह चाहिए, बस। यक्षी सच्चा सामुदायिक प्रयास था। सरकार में रह कर मैंने बोलना सीखा। लेकिन बोर्डियाजी की शिक्षा ने मुझे शिक्षकों, अभिभावकों और बच्चों से सुनना सिखाया। यही संवाद शिक्षा में सुधार का पहला कदम हो सकता है।

प्राथमिक शिक्षा केवल सरकार का ही दायित्व नहीं, बल्कि समाज की साझी जिम्मेदारी भी है। जब समुदाय, शिक्षक और प्रशासन एक दिशा में सोचते हैं तब शिक्षा केवल संस्थानिक नहीं रहती, वह आंदोलन बन जाती है। जब सीखने वाला, सिखाने वाला और समाज साथ चलते हैं तब शिक्षा जीवन का उत्सव बन जाती है।❑

आर्थिक नीतियां असंगठित क्षेत्र को मदद करे

– प्रो. अरूण कुमार

बीकानेर प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा आयोजित किये जाने वाली डॉ. छगन मोहता स्मृति व्याख्यान माला के तहत इस साल प्रख्यात अर्थशास्त्री एवं विचारक प्रो. अरूण कुमार ने उद्बोधन दिया।

बीकानेर के प्रौढ़ शिक्षा भवन सभागार में 7 नवंबर को अपने व्याख्यान में देश में बढ़ती बेरोजगारी का मूल कारण है असंगठित क्षेत्रों का लोप होते जाना बताया। उन्होंने कहा कि देश में बेरोजगारी का सबसे अधिक प्रतिशत महिलाओं और शिक्षित युवा वर्ग में है। देश की आर्थिक नीतियों का पूरा ध्यान संगठित क्षेत्रों के विकास की ओर अधिक रहता है इस कारण देश के असंगठित क्षेत्रों की स्थिति बहुत कमजोर हो रही है जबकि सबसे अधिक रोजगार असंगठित क्षेत्र ही उपलब्ध करवाते है, जबकि आर्थिक नीतियों का प्रमुख उदेश्य असंगठित क्षेत्रों को मजबूत करना होना चाहिए।

अध्यक्षीय उद्बोधन में कवि चिंतक डॉ. नन्दकिशोर आचार्य की राय थी कि जब आर्थिक नीतियां बनायी जाए तब यह विचार करना जरूरी है कि उनसे कितने लोगों को उनके प्रयोजन का लाभ मिल पाएगा। उनका कहना था कि हर कार्य में बढ़ते तकनीकी साधनों के उपयोग सामाजिक एवं मानवीय भविष्य के लिए हानिकारक होते हैं। डॉ. आचार्य ने महात्मा गांधी और लोहिया जी के विचारों के तहत अहिंसक अर्थव्यवस्था पर भी विचार करने की आवश्यकता पर बल दिया तथा जीडीपी की वृद्धि को ही विकास मान लेने की धारणा को भी मानवीय मूल्यों के आधार पर पुनः परिष्कृत करने की बात कही।

कार्यक्रम के प्रारंभ में समिति के अध्यक्ष डॉ. ओम कुवेरा ने छगन मोहता के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि वे अपने चिंतन, मनन से बहुत विशिष्ट व्यक्ति थे। उनकी विचार दृष्टि में व्यक्ति की गरीमा सर्वश्रेष्ठ उदेश्य था। आंगतुको का स्वागत करते हुए संस्था के संयुक्त सचिव डॉ. ब्रजरतन जोशी ने मुख्य वक्ता का परिचय देते हुए व्याख्यानमाला की यात्रा पर प्रकाश डाला। संस्था के कोषाध्यक्ष एडवोकेट गिरीराज मोहता ने आंगतुको के प्रति आभार व्यक्त किया।❑

निज़ाम पर जोधपुर में राष्ट्रीय संगोष्ठी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के सदस्य मशहूर शायर शीन काफ निज़ाम के व्यक्तित्व और कृतित्व पर जोधपुर में दो दिन की संगोष्ठी तफ़हीमे – निज़ाम आयोजित की गई।

संगोष्ठी में देश के कोने कोने से बड़े–बड़े अदबी लोग आये थे जैसे प्रो. ज़मां आजुर्दा, प्रो. नंदकिशोर आचार्य, प्रो. शाफ़े क़िदवई, प्रो. शहनाज़ नबी, प्रो. ख़ालिद अल्वी साहिब, डॉ. मेराज राणा, प्रो. ख़ालिद अशरफ, प्रो. सगीर, डॉ. मुईद रशीदी और डॉ. शफीना बेगम।

इस राष्ट्रीय संगोष्ठी का संयोजन मशहूर कवि और उर्दू अदब की पत्रिका 'इस्तिफ़सार' के संपादक आदिल रज़ा मंसूरी ने 15 और 16 नवंबर को जोधपुर में किया था।

उर्दू अदब के बड़े हस्ताक्षरों ने विभिन्न सत्रों में अपने विवेचनात्मक विचार प्रस्तुत किये। उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता करते हुए कश्मीर से आये प्रो. जमा आर्जुदा ने कहा कि दुनिया ऊपरी तस्वीर देखती है, जड़ नहीं, जबकि असल में बुनियाद तो जड़ें होती हैं।

दिल्ली के प्रोफेसर अहमद महफूज़ का पर्छ उनकी अनुपस्थिति में शयार बृजेश अम्बर ने पढ़ा जबकि युवा रचनाकार डॉ. सफ़ीना बेग़म ने निज़ाम की नज़्मों पर अपना पर्चा पढ़ा। दिल्ली के के एक अन्य प्रोफेसर खालिद अशरफ का कहना था कि निज़ाम के कलाम में हिन्दुस्तानियत झलकती है। अलीगढ़ के प्रोफेसर सफ़ीर इब्राहीम का कहना था कि निज़ाम के दोहे पसमंजर और शेरी आहंग में महारथ रखते हैं।

कोलकाता की प्रोफेसर शहनाज़ नबी ने कहा कि निज़ाम की नज़्मनिगारी में बात निकलती है तो दूर तक जाती है। अलीगढ़ के डॉ. मुईद रशीदी का कहना था कि निज़ाम की शायरी किसी साँचे में नहीं ढली है।

दिल्ली के प्रोफेसर खालिद अल्वी का कहना था कि किसी शायर का सम्मान उसके ही शहर में हो ऐसा जोधपुर में ही हो सकता है।

जलसे का समापन भाषण जाने माने लेखक, कवि, समीक्षक डॉ. नन्दकिशोर आचार्य ने दिया।❑

हाथ से लिखना आत्मा से संवाद है !

हाथ से लिखना केवल परंपरा का निर्वाह नहीं, बल्कि आत्मा से संवाद का माध्यम है। कलम और कागज़ का मेल रचनात्मकता, विविधता और मौलिकता को सहेजकर रखता है। इस युग में जब तकनीकी उपकरण हमारी सोच पर प्रभाव डाल रहे हैं, तब हमें अपनी मौलिकता और संवेदना को बचाए रखना चाहिए। यह बात सुपरिचित आलोचक और दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की अध्यक्ष प्रो. सुधा सिंह ने पिछले दिनों दिल्ली के हिन्दू महाविद्यालय में हिंदी विभाग की हस्तलिखित पत्रिका 'हस्ताक्षर' के नए अंक के लोकार्पण समारोह में कही।

उनका कहना था कि लेखन की परंपरा का सबसे प्रामाणिक स्वरूप वही है, जिसमें मनुष्य की आत्मा, संवेदना और विचार का मेल हो। आज जब कृत्रिम बुद्धिमत्ता हमारे विचारों को प्रभावित कर रही है, तब हाथ से लिखना किसी प्रतिरोध से कम नहीं है, यह मनुष्य की रचनात्मकता को जीवित रखता है।

प्रो सिंह ने कहा कि पत्रकारिता जब तक संवेदना, ईमानदारी और विचारशीलता जीवित है, तब तक वह साहित्य से जुड़ी हुई है।

समारोह के स्वागत उद्बोधन में विभाग के प्रभारी प्रो. बिमलेंदु तीर्थंकर ने कहा कि 'हस्ताक्षर' केवल एक पत्रिका नहीं, बल्कि हमारी सृजनशीलता और संवेदना का प्रतीक है। इसे हस्तलिखित रूप में बनाए रखना हमारी सांस्कृतिक विरासत और भाषाई विविधता की रक्षा के समान है।

प्रो तीर्थंकर ने सुधा सिंह को पौधा भेंट किया जबकि डॉ. नीलम सिंह ने शॉल ओढ़ाकर उनका अभिनंदन किया।

'हस्ताक्षर' की संस्थापक सम्पादक प्रो. रचना सिंह ने पत्रिका के दो दशकों की यात्रा के पड़ावों का जिक्र करते हुए बताया कि युवा विद्यार्थियों के उत्साह व समर्पण से ही इसका प्रकाशन संभव होता रहा है। प्रो. सिंह ने कहा कि हम मशीन का विरोध नहीं कर रहे लेकिन हमारा प्रयास है कि नयी पीढ़ी को बताया जाए कि मशीन मनुष्य का विकल्प नहीं हो सकती।

समारोह के अंत में 'हस्ताक्षर' के वर्तमान सम्पादक डॉ. पल्लव ने रचनाशीलता के महत्व पर टिप्पणी करते हुए कहा कि मनुष्य रचनात्मकता से जुड़कर ही अपनी सीमाओं से ऊपर उठता है तथा 'हस्ताक्षर' पत्रिका इसी सृजनशीलता का प्रतीक है। उनका कहना था कि सृजनशीलता के बिना मनुष्य कुंठित हो जाता है जिससे उसके व्यक्तित्व में अनेक अवरोध उत्पन्न हो जाते हैं। ❑

शिक्षा की अलखः प्रकृति को बचाने की शिक्षा

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति की शिक्षा का अलख अभियान के तहत 11 नवंबर को जयपुर की मोजमाबाद ग्राम पंचायत के गांव डोगरी में एक दिन का शिविर रखा गया जिसमें ग्रामीण महिलाओं को प्रकृति को बचाने की शिक्षा दी गई तथा औषधि वनस्पतियों के बारे में जानकारी दी गई। वन सेवा के पूर्व अधिकारी वनस्पति विशेषज्ञ देवेन्द्र भारद्वाज ने शिविर में आये प्रतिभागियों को, जिनमें 28 महिलाएं शामिल थीं, को पर्यावरण संरक्षण व औषधीय पौधे लगाने की जानकारी दी। उन्होंने नीम, गिलोय, सहजना, सांठी, बबूल, खेजड़ी तथा हठजोड़ जैसे औषधीय पौधों का, जो स्थानीय स्तर पर सुलभ होते हैं, का महत्व समझाया। उन्होंने ग्रामीणों को रासायनिक खाद के प्रयोग के नुकसान तथा गोबर से खाद बनाने की वैज्ञानिक विधि सहज और सरल भाषा में सिखाई। ग्रामीण महिलाओं ने भी बातचीत में सक्रिय भूमिका निबाही।

शिविर में आयी महिलाओं को उन्हें घर में लगाने के लिए हठजोड़ व गिलोय की टहनियां दी गईं। स्थानीय राजकीय विद्यालय के प्राध्यापक को समिति के नवसाक्षरता की 62 पुस्तकों का सेट स्कूल के पुस्तकालय के लिए भेंट किया गया। शिविर में आईं महिलाओं में बचत को बढ़ावा देने के लिए समिति की ओर से विशेष रूप से बनवाए गये गुल्लक भी भेंट किए गए। शिविर में समिति की कार्यक्रम अधिकारी श्रीमती बटीना मलिक एवं दिलीप शर्मा भी सम्मिलित हुए।❑

भारत के दानवीरों की रैंकिंग में शिव नादर

वि एचसीएल टेक्नोलॉजीज के संस्थापक शिव नादर और उनका परिवार एडलगिव और हुरुन परोपकार सूची 2025 में पहले स्थान पर हैं, जिन्होंने, एक रिपोर्ट के अनुसार, पिछले साल 2,708 करोड़ रुपयों का दान दिया।

एडलगिव और हुरुन परोपकार सूची के अनुसार, शिव नादर और उनके परिवार ने प्रतिदिन 7.4 करोड़ रुपयों का दान दिया, जिससे उन्हें इस वर्ष 'भारत के सबसे उदार' व्यक्ति होने का खिताब मिला। यह लगातार चौथी बार है जब 80 वर्षीय 'एचसीएल टेक' प्रमुख ने जरूरतमंदों की मदद के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दिखाते हुए परोपकार सूची में शीर्ष स्थान हासिल किया है।

शिव नादर

सूची से यह भी पता चलता है कि पिछले पांच वर्षों में कुल मिलाकर, एचसीएल टेक के संस्थापक ने 10,122 करोड़ रुपयों का दान दिया।

उनका अधिकांश दान शिक्षा के क्षेत्र में गया। शिव नादर, 1994 में स्थापित अपने शिव नादर फाउंडेशन के माध्यम से, परोपकारी कार्यों को आगे बढ़ाते रहे हैं।

उनका दान शिक्षा, कला एवं संस्कृति पर केंद्रित है, जिसमें शिव नादर विश्वविद्यालय और विद्याज्ञान जैसे संस्थानों की स्थापना भी शामिल है, जो पूरे भारत में युवाओं के लिए अवसरों को बढ़ावा देते हैं।

रिलायंस इंडस्ट्रीज के अध्यक्ष मुकेश अंबानी वित्त वर्ष 2025 में 626 करोड़ रुपयों का दान देकर परोपकारियों की इस सूची में दूसरे स्थान पर रहे।अंबानी परिवार ने मुख्य रूप से रिलायंस फाउंडेशन के माध्यम से दान दिया, जिसके वर्तमान फोकस क्षेत्रों में ग्रामीण परिवर्तन, स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, खेल विकास, आपदा प्रबंधन, महिला सशक्तिकरण, कला एवं संस्कृति, विरासत संरक्षण और शहरी नवीनीकरण शामिल हैं।

अदाणी समूह के अध्यक्ष गौतम अदाणी ने एडलगिव हुरुन इंडिया परोपकार सूची में पांचवें स्थान पर हैं।

इस 63 वर्षीय उद्योगपति ने वित्त वर्ष 2025 में परोपकार के लिए 386 करोड़ रुपयों का दान दिया।

एडलगिव हुरुन इंडिया परोपकार सूची में रैंकिंग:

1.शिव नादर एवं परिवार; दान – 2,708 करोड़ रुपये।

2.मुकेश अंबानी एवं परिवार; दान ¯ ₹626 करोड़ रुपये।

3.बजाज परिवार; दान ¯ 446 करोड़ रुपये।

4.कुमार मंगलम बिड़ला एवं परिवार; दान ¯ 440 करोड़ रुपये।

5.गौतम अडानी एवं परिवार; दान ¯ 386 करोड़ रुपये।

6.नंदन नीलेकणि; दान ¯ 365 करोड़ रुपये।

7.हिंदुजा परिवार; दान ¯ 298 करोड़ रुपये।

8.रोहिणी नीलेकणि; दान ¯ 204 करोड़ रुपये।

9.सुधीर मेहता और समीर मेहता; दान ¯ 189 करोड़ रुपये।

10.साइरस एस. पूनावाला और अदार पूनावाला; दान ¯ 173 करोड़ रुपये।❑

महात्मा गांधी का कथन

सत्य के अलावा कोई कूटनीति नहीं

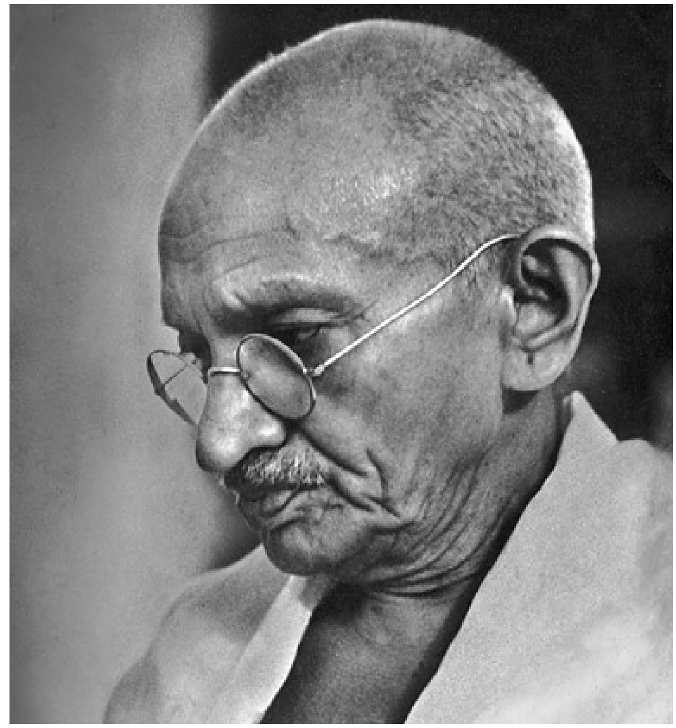

मेरा मार्ग स्पष्ट है। मेरे पास कोई गोपनीय तरीके नहीं हैं। मैं सत्य के अलावा कोई कूटनीति नहीं जानता। मेरे पास अहिंसा के अलावा कोई हथियार नहीं है। मैं कुछ समय के लिए विवेक से भटक सकता हूं, परन्तु हमेशा के लिए नहीं। मैं सबसे उत्तम उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी हिंसक तरीकों का कड़ा विरोधी हूं। इसलिए हिंसा के समर्थकों और मेरे बीच कोई मेल-मिलाप का कोई आधार नहीं है। परन्तु मेरा अहिंसा का सिद्धांत मुझे अराजकतावादियों और हिंसा में विश्वास रखने वालों के साथ संगति करने में बाधक नहीं बनता है। मेरी उनसे संगत सदैव केवल उन्हें हिंसा की सोच से मुक्त करने के लिए होती है जो मुझे उनकी भूल प्रतीत होती है। अनुभव ने मुझे सिखाया है कि असत्य और हिंसा से स्थायी भला कभी नहीं हो सकता। यदि मेरा यह विश्वास एक भ्रम भी है, तो यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि यह एक आकर्षक भ्रम है। (यंग इंडिया 11.12.1924) ❑

RS-CIT

RS-CIT एक विस्तृत बेसिक कंप्यूटर कोर्स है जिसकी मदद से कंप्यूटर के आवश्य कौशल सीख कर कंप्यूटर पर कार्य करने मे दक्षता हासिल की जा सकती है एवं विभिन्न डिजिटल सुविधाओं के उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है

RS-CIT कंप्यूटर कोर्स ही क्यों ?

ई-लर्निंग पर आधारित, ऑडियो-विडियो कंटेंट तथा चरणबद्ध असेसमेंट

राज्य सरकार की विभिन्न सरकारी नौकरियों में एक पात्रता ।

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 6500 ज्ञान केंद्र ।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा द्वारा परीक्षा एवं प्रमाण पत्र ।

अन्य कोर्सेज

- Financial Accounting
- Spoken English & Personality Development
- Desktop Publishing
- Digital Marketing
- Advanced Excel
- Cyber Security
- Business Correspondence

Rajasthan Knowledge Corporation Limited

नजदीकी ज्ञान केंद्र के लिए www.rkcl.in पर विजिट करें या 9571237334 पर WhatsApp करें

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा क्लासीफाइड प्रिन्टर्स, जयपुर में मुद्रित तथा 7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्रकाशित। संपादक- राजेन्द्र बोड़ा

अनौपचारिका: पृष्ठ-28, दिसम्बर, 2025 रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नयी दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

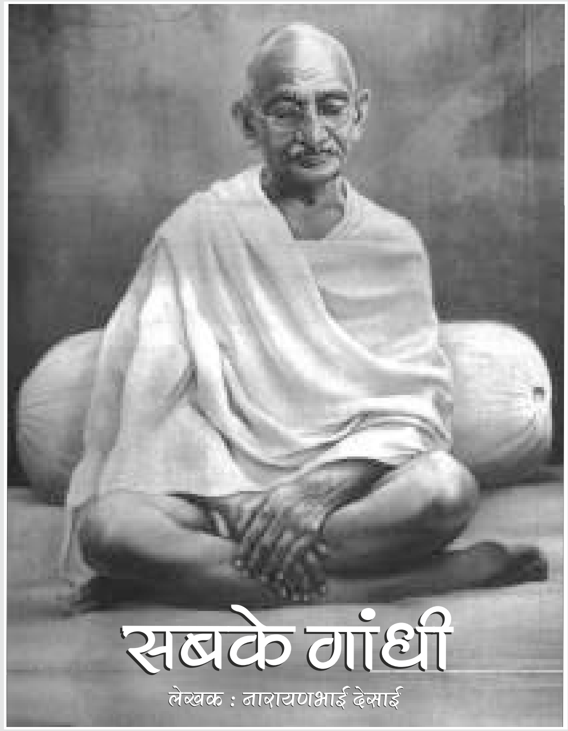

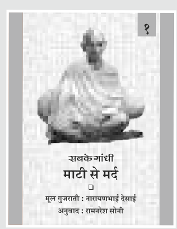

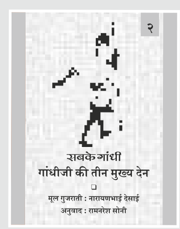

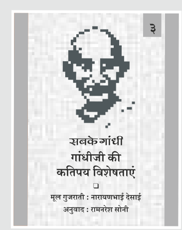

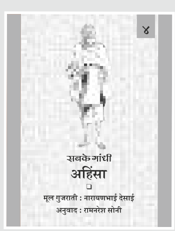

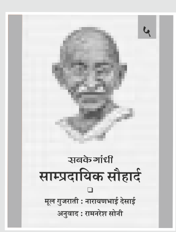

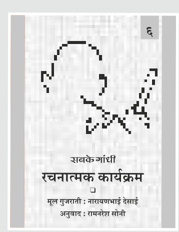

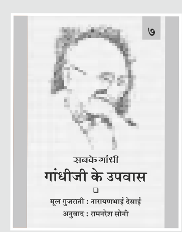

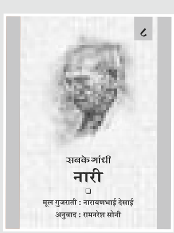

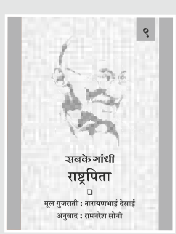

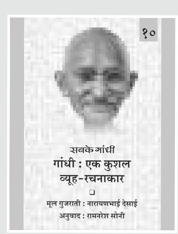

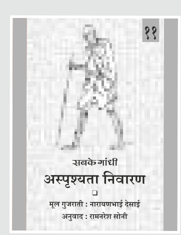

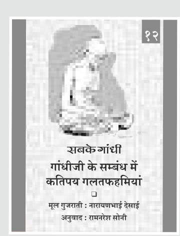

सहयोग राशि के लिए
बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

सबके गांधी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

12 पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये 500/– मात्र डाक खर्च रुपये 75/– अलग से देय होगा।